RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 76, अंक : 16 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 21 जुलाई, 2019

विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120

दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–76, अंक : 16, 18-21 जुलाई 2019 तदनुसार 6 श्रावण, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

बुद्धि द्वारा शीघ्र विजय

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

एता धियं कृणवामा सखायोऽ प या माताँ ऋणुत व्रजं गोः।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्।।

–ऋ० ५।४५।६

शब्दार्थ–हे **सखायः** = मित्रो! **एत** = आओ। **धियम्** = ऐसी बुद्धि या क्रिया कृणवाम करें, **या** = जो **माता** = माता की भाँति **गो+व्रजम्** = गौ के बाड़े को= ज्ञान के समुद्र को **अप+ऋणुत** = खोल दे और **यया** = जिसके द्वारा **मनुः** = मनुष्य **विशि+शिप्रम्** = प्रजा में शीघ्रकारी, शान्त, सौम्य स्वभाव जन को **जिगाय** = जीत लेता है और **यया** = जिससे **वङ्कुः** = बाँका **वणिक्** = बनिया **पुरीषम्** = ऐश्वर्य **आप** = प्राप्त करता है।

व्याख्या–संसार में सबसे प्रथम गुरु माता है। सबसे प्रथम ज्ञान की गति का रहस्य वही खोलती है। बालक को पदार्थों का नाम, आचार, व्यवहार की शिक्षा वह देती है। सन्तान को शिक्षा देते समय माता के मन में ईर्ष्या-द्वेष आदि किसी भी कुत्सित भावना का लवलेश नहीं होता। वरन् मेरी सन्तान उत्तम हो, मुझसे बढ़ जाए, संसार में इसका नाम और यश चमके, ऐसी उदात्त भावना उसके मन में कार्य कर रही है। **'गोः व्रजम्'** का अर्थ है-गौओं का बाड़ा, ज्ञान का समुदाय, इन्द्रियों की गति। माता ही सब ज्ञान देती है। इन्द्रियों से ठीक-ठीक काम लेना भी माता ही सिखाती है। माता अपने इस व्यवहार से सन्तान के मन को जीत लेती है। मनुष्य को अपने अन्दर मातृसमान बुद्धि का संचय करना चाहिए, अर्थात् ऐसी बुद्धि का संचय करना चाहिए, जिससे हितभावना, कल्याणकामना और प्रीति की रीति-नीति ही जीती-जागती हो, द्वेष-मत्सर के अमङ्गल अभद्र, मारक भाव न हों। इससे पूर्व मन्त्र में इसी बात को कहा है-

एतोन्वद्य सुध्यो भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छः।।

–ऋ० ५।४५।५

आओ! हम आज ही उत्तम बुद्धि वाले बनें, बुराई के द्वारा भलाई को प्राप्त करें। द्वेष को दूर फैंकें और श्रेष्ठ चाल वाले होकर यजमान=यज्ञपरायणता को प्राप्त हों।

अच्छी बुद्धि का प्रमाण ही यह है कि मनुष्य में ईर्ष्या-द्वेष न हों, बुराई से भलाई प्राप्त करने की योग्यता हो तथा भले पुरुषों की सङ्गति करे। यही वह बुद्धि है-**'यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय'** = जिससे मनुष्य प्रजा में सौम्यजन को जीत लेता है। द्वेषरहित मधुर व्यवहार की महिमा यहाँ तक है कि-**'यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्'** = जिससे बाँका बनिया भी धन प्राप्त करता है। बनिया मीठी-मीठी बाते करके ग्राहक को मोहकर उससे यथेष्ठ धन प्राप्त करता है।

स्पष्ट ही, अभिधावृत्ति में माता के समान प्रेममयी, मधुर, स्वच्छ व्यवहारयुक्त बुद्धि का संग्रह करना योग्य है।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयंसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

–यजु० ४०.१४

भावार्थ–जो विद्वान् पुरुष, विद्या-अविद्या के यथार्थरूप को जान लेते हैं, वे महापुरुष, जड़ शरीरादिकों और चेतन आत्मा को परमार्थ के कामों में लगाते हुए, मृत्यु आदि सब दुखों से छूट कर सदा सुख को प्राप्त होते हैं। यदि जड़ प्रकृति आदि और शरीरादि कार्य न हो तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति कैसे करे और जीव, कर्म, उपासना और ज्ञान के सम्पादन करने में कैसे समर्थ हों ? इससे यह सिद्ध हुआ कि, न केवल जड़, न केवल चेतन से और न केवल कर्म से और न केवल ज्ञान से, कोई धर्मादि की सिद्धि करने में समर्थ होता है।

वायुरनिलममृतथेदं भस्मातꣳशरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳस्मर।।

–यजु० ४०.१५

भावार्थ–शरीर को त्यागते समय पुरुषों को चाहिये कि, परमात्मा के अनेक नामों में सब से श्रेष्ठ जो ओ३म् नाम है, उसका वाणी से जाप और मन से उस के अर्थ सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर का चिन्तन करें। यदि आप, अपने जीवन में उस सबसे श्रेष्ठ परमात्मा के ओ३म् नाम का जाप और मन से उस परम प्यारे प्रभु का ध्यान करते रहोगे तो, आपको मरण समय में भी उसका जाप और ध्यान बन सकेगा। इसलिए हम सब को चाहिये कि ओ३म् का जाप और उसके अर्थ परमात्मा का सदा चिन्तन किया करें, तब ही हमारा कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।

–यजु० ४०.१६

भावार्थ–हे सर्वान्तर्यामी जगदीश! आप हमारे सबके ज्ञान और कर्मों को जानते हो, आपसे कुछ भी छिपा नहीं। हमारे कुसंस्कार और कुटिलता रूपी पाप को, दूर करो। इस लोक और परलोक में सुख प्राप्ति के लिए हमें उत्तम मार्ग से ले चलो, हम आपको बहुत ही नम्रता पूर्वक बारम्बार प्रणाम और आपकी ही स्तुति करते हैं।

श्रावणी उपाकर्म एवं ऋषि तर्पण

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

स्वामी दयानन्द सरस्वती का कथन है कि संसार में ज्ञान से अधिक मूल्यावान् दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। इसलिए ज्ञान की प्राप्ति के लिए मनुष्य को सदैव तत्पर रहना चाहिए। राजा भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में लिखा है-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रचछन्न गुप्तं धनं,
विद्या भोग करी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुः,
विद्या बन्धु जनो विदेश गमने विद्या परा देवता,
विद्या राजसु पूज्यते न हु धनं विद्या विहीनः पशु,

अर्थ-विद्या ही मनुष्य का श्रेष्ठ स्वरूप है। छिपा हुआ सुरक्षित धन है। विद्या ही भोग और विलास को प्रदान करने वाली है। विद्या ही संसार में कीर्ति फैलाने वाली और सुख देने वाली है। विद्या गुरूओं की भी गुरू है। विदेश जाने पर विद्या ही बन्धु जनों के समान रक्षा करने वाली है। विद्या ही सर्वश्रेष्ठ देवता के समान है। राजाओं के मध्य भी विद्या की ही पूजा होती है धन की नहीं। विद्या विहीन नर तो पशु को तुल्य है। वेद विद्या का सागर है अतः वेदाध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

वेदमेकसदाभ्यस्येत्तपस्त-प्स्यन्द्विजोत्तमः। वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते।। ऋ. 2.141.

अर्थ-द्विजोत्तम पुरूष सर्वकाल तपश्चर्याः करता हुआ वेद का ही अभ्यास करे। इस कारण ब्राह्मण को वेदाभ्यास करना इस संसार में परम तप कहा गया है।

वेदाध्ययन की महत्ता पर यजुर्वेद 31.18 में कहा गया है-

वेदाहमेतं पुरूषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

मैं उस महान् पुरूष को जो सूर्य के समान प्रकाश स्वरूप, अज्ञानान्धकार से पृथक है जानता हूँ। उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु को जीत सकता है दूसरा कोई उपाय इसके अतिरिक्त मृत्यु को जीतने का नहीं है। इसी कारण वेदाध्ययन की महत्ता बताते हुए मनु कहते है-

योऽनधीत्त्यद्विजो वेदमन्यत्र कुरूते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वया।। मनु. 2.143.

जो द्विज वेद को न पढ़ कर अन्य शास्त्रों के अध्ययन में श्रम करता है वह जीवित ही अपने वंश के सहित शून्द्रपन को प्राप्त हो जाता है।

वेदाध्ययन का प्रारम्भ मनुष्य किस आयु से प्रारम्भ करे। इस पर स्वामी दयानन्द अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में लिखते हैं-'जन्म में पांचवें वर्ष तक माता फिर छः वर्ष से आठ वर्ष तक पिता शिक्षा करें और नवें वर्ष के प्रारम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य कुल (गुरूकुल)... में भेज दें।'

बालकों को आचरण की शिक्षा माता-पिता उससे पूर्व ही दे देवें।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्त स्मार्त एव च।

वेद और स्मृतियों में कहा गया जो आचरण है वही श्रेष्ठ धर्म है।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मण-स्योपनायनम्।
गर्भायेकादशेराज्ञो गर्भतु द्वादशो विशः।। मनु. 1.11

ब्राह्मण अपने बालक का गर्भ स्थापित के दिन से आठवें वर्ष के अन्त में उपनयन संस्कार करा कर, क्षत्रिय अपने बालक का ग्यारहवें वर्ष के उपरान्त तथा वैश्व अपने बालक का बारहवें वर्ष के उपरान्त गुरूकुल में प्रवेश दिला दें। वैदिक संस्कृति में संस्कारों का बड़ा महत्व है। गुरूकुल में वेद का अध्ययन करने से पूर्व उपनयन संस्कार आवश्यक है। कहा जाता है-

जन्मना जायते शूद्र संस्कारात् द्विज उच्यते।

जन्म काल से तो सभी शूद्र होते हैं संस्कार होने पर द्विज बनते हैं। गुरूकुलों में श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन गुरूकुल में प्रवेश लेने वाले बालकों का उपाकर्म संस्कार होता था। उन्हें यज्ञोपवीत पहनाया जाता था। बिना यज्ञोपवीत व्यक्ति को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं होता था। लोग दूर-दूर से अपने बालकों को लेकर गुरूकुल में आते थे। फिर गुरूकुल में एक बृहद यज्ञ का आयोजन होता था। यज्ञ में भाग लेने के लिए दूर-दूर से विद्वत् गण, सन्यासी, धनिक लोग, राजा-महाराजा भी उत्साहपूर्वक आते थे। उपाकर्म संस्कार के उपरान्त विद्वान् संन्यासियों, गुरूकुल के आचार्यों आदि के आध्यात्मिक विषयों पर उपदेश होते थे। संस्कारों की महत्ता प्रतिपादित की जाती थी। श्रेष्ठीगण, सामन्तगण आदि गुरूकुलों को दान भी देते थे। उपाकर्म के बाद क्या होता था? इस पर अथर्ववेद का कथन है-

उपनीय गुरूः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्नि कार्यं न सन्ध्यो-पासनमेव च।। मनु. 2.44

गुरू शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार करके पहले स्वच्छता से रहने की विधि, सदाचरण और सद्व्यवहार, अग्नि होत्र की विधि और सन्ध्या उपासना की विधि सिखायें।

अथर्ववेद में बताया गया है कि उपाकर्म के बाद क्या होता है?

आचार्य उपनयमानो ब्रह्म-चारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रोस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमुमभिसं यन्ति देवाः। अथर्व. 11.50.1

आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञापूर्वक समीप रखकर तीन रात्रि पर्यन्त सन्ध्योपासनादि की शिक्षा कर उसके आत्मा के अन्दर गर्भरूप विद्या स्थापन करने के लिए उसको पूर्ण विद्वान् कर देता और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर पर आता है तब उसको देखने के लिए सब विद्वान् लोग सम्मुख जाकर उसका बड़ा सम्मान करते हैं।

ब्रह्मचारी को अपने से बड़ों का सम्मान करने की शिक्षा दी जाती है।

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशो बलम्।। मनु. 2.96

अर्थ-अभिवादन करने का जिसका स्वभाव और विद्या अवस्था में वृद्ध पुरूषों का जो नित्य सेवन करता है उसकी आयु विद्या कीर्ति और बल इन चारों की निरन्तर वृद्धि हुआ करती है। ब्रह्मचारी को बताया जाता है कि वेद, अग्निहोत्र आदि में कभी भी अनध्याय नहीं होता है अर्थात् ये नित्य कर्म हैं।

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव न्यैत्यके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होम मन्त्रेषु चैव हि।। मनु. 2.80

अर्थ-वेद के पठन पाठन में और नित्य कर्म में आने वाले जप अथवा संध्योपासना में तथा यज्ञ करने में अनध्याय का विचार नहीं होता।

समावर्तन संस्कार होने तक होमादि कर्त्तव्य करने पर कहा गया है-

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधः शय्यां गुरोहितम्।
आसमावर्तनात्कृतोपनयनो द्विजः।। मनु. 2.83

यज्ञोपवीत संस्कार में दीक्षित द्विज अग्नि होत्र करना, भिक्षा वृत्ति करना, भूमि में शयन, गुरू की सेवा समावर्तन संस्कार तक करता रहे। वेदाध्ययन का पहला सत्र श्रावण मास की पूर्णिमा से उपाकर्म के साथ प्रारम्भ होकर पौष कृष्णा अमावस्या को समाप्त होता था। कालान्तर में समावर्तन संस्कार भी इसी दिन होना प्रारम्भ हो गया, इसलिए जिन ब्रह्मचारियों का वेदाध्ययन समाप्त हो जाता था, उनके माता-पिता आदि भी इस दिन उत्सव में आने लगे। इससे पर्व की दिव्यता द्विगुणित हो गई।

चिरकाल के बाद वेद के पठन-पाठन का प्रचार न्यून हो जाने पर साढ़े चार मास तक नित्य वेद-पारायण की परिपाटी लुप्त हो गई और जनता प्राचीन उपाकर्म और उत्सर्जन के स्मारक के रूप में श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन उपाकर्म और उत्सर्जन कर्म साथ-साथ ही करने लग गई। बाद में इसी कर्म को ऋषि तर्पण कहा जाने लगा। इस अवसर पर ही लोग अपने यज्ञोपवीत भी बदलने लग गए। आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री के अनुसार ऋषि तर्पण यज्ञ में सम्मिलित होने के चिन्ह् स्वरूप याजक और यजमानों के दाहिने हाथ में रक्षा सूत्र (रक्षा बन्धन) भी बांधे जाते हों और वर्तमान काल में रक्षा बन्धन का यही स्त्रोत हों।

राजपूत काल में जब देश पर मुस्लिम आक्रमणकारियों के हमले होने लगे और आक्रमणकारी लोग महिलाओं को भी लूट का माल समझने लगे तब जौहर की क्रिया

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

16 जुलाई गुरू पूर्णिमा पर विशेष---

गुरू दक्षिणा में समर्पित जीवन

प्राचीन भारत में गुरू शिष्य सम्बन्ध की अद्‌भुत परम्परा रही है। आज का शिष्य विद्यालयों में फीस देता है और शिक्षा ग्रहण करता है, परन्तु भारत की प्राचीन गुरूकुल पद्धति में शिष्य से कोई फीस नहीं ली जाती थी। भिक्षा द्वारा अन्नादि लाकर दैनिक आवश्यकताओं को पूरा किया जाता था। शिक्षा समाप्ति पर अपने सामर्थ्य के आधार पर और गुरू की आवश्यकतानुसार स्वयं ही निर्णय लेकर गुरू के चरणों में अपनी श्रद्धा के अनुसार कोई वस्तु अर्पण करते थे। उसे गुरू दक्षिणा के रूप में जाना जाता था।

इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए स्वामी दयानन्द ने अपने गुरू स्वामी विरजानन्द को दक्षिणा देने का निश्चय किया। गुरू दक्षिणा के रूप में दी जाने वाली वस्तु द्वारा गुरू की प्रसन्नता की इच्छा शिष्य के हृदय में हुआ करती है। स्वामी दयानन्द के पास कोई पार्थिव सम्पत्ति तो थी नहीं। अपनी दैनिक आवश्यकता के लिए वे स्वयं दूसरों के ऊपर निर्भर थे। किसी तरह भिक्षा के रूप में स्वामी विरजानन्द की प्रिय वस्तु लौंग एक थाली में सजाकर अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से आप्लावित होकर, बाल ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द ने उसे गुरू चरणों में अर्पित किया। लौंग की सुगन्ध कमरे को सुगन्धित कर रही थी। गुरू विरजानन्द प्रज्ञाचक्षु थे परन्तु सुगन्ध से पहचान लिया और दयानन्द से बोले- वत्स दयानन्द! क्या लाए हो? स्वामी दयानन्द ने निश्छल आनन्द से मुदित होकर कहा-गुरूजी, थोड़ी सी लौंग है। इस पर गुरू विरजानन्द जी ने कुछ पल रूककर गम्भीर भाव से कहा-दयानन्द मैं तुम्हारी गुरू भक्ति और श्रद्धा को समझता हूं परन्तु मैं तुमसे कुछ और चाहता हूं। गुरू के ऐसा कहने पर स्वामी दयानन्द की बड़ी विचित्र अवस्था थी। गुरू को प्रसन्न करने के लिए बड़ी मुश्किल से कुछ लौंग माँगकर लाया था परन्तु गुरूजी मुझसे कौन सी चीज चाहते हैं। इस कल्पना से कि गुरूजी कौन सी वस्तु मांग लेंगे, स्वामी दयानन्द अपने शारीरिक सामर्थ्य, बौद्धिक प्रतिभा और व्यवहारिक दक्षता के लिए अपने आपको दृढ़ता धारण करने का प्रयास कर रहे थे। शिष्य दयानन्द बड़ी श्रद्धा के साथ गुरू विरजानन्द जी के सामने नतमस्तक होकर निवेदन करते हैं कि गुरूजी आप आदेश दीजिए मैं अपना जीवन अर्पण करके भी उसे पूरा करने का प्रयास करूंगा।

स्वामी दयानन्द के निवेदन पर गुरू विरजानन्द अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं-देखो दयानन्द! भारत ही नहीं, विश्व भर के मानव अज्ञान अविद्या के अन्धकार में डूबकर बहुत कष्ट को प्राप्त हो रहे हैं, उसे सुखी देखना चाहता हूं। वे अपनी कुरीतियों, कुप्रथाओं, की बेड़ियां तोड़कर ज्ञान और विद्या के प्रकाश में प्रकाशित हों। वे सत्य-असत्य, नित्य-अनित्य, सुख-दुख, राग-द्वेष के प्रति विवेक ज्ञान प्राप्त कर लें और नित्यानन्द में आनन्दित रहें। आज संसार सत्य विद्या का प्रचार करने वाले वेद ज्ञान को भूल चुका है, मत-मतान्तरों, सम्प्रदाय और एक ईश्वर की पूजा के स्थान पर अपने-अपने ईश्वर बना बैठा है, मूर्तिपूजा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। संसार के मानव मात्र को वेद ज्ञान रूपी सूर्य की किरणों का प्रकाश तुम्हीं दे सकते हो। मानव की उन्नति के साथ ही जीव मात्र की स्थावर जंगम की उन्नति आश्रित है। मैं चाहता हूं कि जो विद्या आज तक तुमने अर्जित की है, उसका प्रसार संसार भर में जीवमात्र के कल्याण के लिए करो। इतना कहकर गुरू विरजानन्द चुप हो गए।

गुरू विरजानन्द की वाणी जैसे-जैसे आगे बढ़ती जा रही थी स्वामी दयानन्द के भाव बदलते जा रहे थे, वे जिस परीक्षा के लिए अपने आपको तैयार कर रहे थे, अब उसकी आवश्यकता नहीं थी। गुरू विरजानन्द को अपनी प्रदत्त विद्या के लुप्त हो जाने का भय तथा चिन्ता व्याप्त थी। कितने ही शिष्यों को उन्होंने पढाया? कोई शिष्य दयानन्द के समान मेधावी, पूर्ण शुद्ध ब्रह्मचारी एवं परहित चिन्ता व्यग्र नहीं मिला। इसे सच्चे शिव की खोज थी, वह इसने पा लिया है। समाधि में उस नित्य, शुद्ध, पवित्र, आनन्दमय, ज्ञान स्वरूप के सान्निध्य में परम पवित्र ज्ञान का प्रसाद भी पा चुका है। वह सांसारिक चिन्ताओं से विरक्त, स्थिर समाधि में आनन्दमग्न हो गया तो इस सत्य विद्या का प्रकाश इस संसार में कौन फैलाएगा? क्या यह दीपक अपने प्रकाश से स्वयं ही प्रकाशित रहेगा? संसार के दु:खी जीवमात्र को इस अन्धकार से कौन निकालेगा? अपनी आशाओं को मूर्तरूप देने में समर्थ, इस दयानन्द को वेद सूर्य का प्रकाश करने में लगाने का निश्चय कर गुरू जी ने दक्षिणा के रूप में प्रस्ताव दिया।

स्वामी दयानन्द पुलकित होकर गुरू के चरणों में गिर पड़े। गुरू उससे वही संकल्प करा रहे थे जिसका उन्होंने स्वयं संकल्प लिया था। मानो स्वामी दयानन्द प्रसन्न होकर जैसे इन पक्तियों में कह रहे हो- गुरूदेव प्रतिज्ञा है मेरी पूरी करके दिखला दूंगा, वैदिक धर्म की बलिवेदी पर जीवन भेंट चढा दूंगा। तब गुरू विरजानन्द ने गद्-गद् हो कर आशीर्वाद दिया।

स्वामी दयानन्द ने गुरू दक्षिणा को चुकाते-चुकाते, सत्य विद्या का प्रचार-प्रसार करने, सत्य को ग्रहण और असत्य के त्यागने में सदा उद्यत, प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार व्यवहार करने, एक ही ईश्वर के सत्य स्वरूप की स्थापना करने, अपनी उन्नति में ही सन्तुष्ट न रहकर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने, मन-वचन-कर्म से एकनिष्ठ सत्यवादी दयानन्द ने अनेकों कष्टों को सहा, विष पान किया, परन्तु कभी भी डगमगाया नहीं। संसार को वेद का सत्य ज्ञान दिया। वेदों के सत्यार्थ प्रकाश के कारण अनुपमेय विद्या बल बुद्धि से प्रदीप्त होकर महर्षि कहलाया । गुरू पूर्णिमा के अवसर पर इस महान् गुरू के महान् शिष्य की अद्‌भुत दक्षिणा को अपने जीवन में धारण करके संसार भर के कल्याण की भावना को लेकर यदि हम कार्य करें तो अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हैं।

आज समाज को दण्ड़ी स्वामी विरजानन्द जैसे गुरू और स्वामी दयानन्द जैसे शिष्य की आवश्यकता है। गुरू का आदर्श जीवन ही समाज सेवा के लिए जीवन समर्पित करने वाले शिष्यों का निर्माण करता है। गुरू विरजानन्द चाहते तो अपने लिए कुछ दयानन्द से माँग लेते परन्तु उनके समक्ष निजी हित से ऊपर राष्ट्रहित था। उन्होंने महर्षि दयानन्द को समाज का सुधार करने के लिए तैयार किया था। वे अपने राष्ट्र को फिर से विश्व गुरू देखना चाहते थे। लुप्त हुई वेद विद्या का उद्धार करना चाहते थे। उन्हें इस बात का पूरा विश्वास था कि स्वामी दयानन्द उनके बताए गए मार्ग पर चलते इस कार्य को कर सकते हैं। गुरू पूर्णिमा के अवसर पर हम भी यह संकल्प लें कि जो मार्ग गुरू विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द को दिखाया था और जिस मार्ग पर चलते हुए महर्षि दयानन्द ने समाज का उद्धार किया, उसी मार्ग पर चलते हुए हम भी लोप हो रही वेद विद्या का प्रचार-प्रसार करें। महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना इसीलिए की थी कि उनके बाद भी समाज सुधार के कार्य चलते रहें। इसलिए गुरू पूर्णिमा का पर्व हमें गुरू के बताए गए मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। हम सभी आदर्श गुरू स्वामी विरजानन्द एवं आदर्श शिष्य महर्षि दयानन्द के जीवन से प्रेरणा लेकर आर्य समाज की उन्नति के लिए कार्य करें।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

यज्ञ से पूर्व शुद्धि

ले.-पण्डित वेद प्रकाश शास्त्री, 4-E, कैलाश नगर, फाजिलका

3. शरीर शुद्धि-इसके दो भेद हैं-

(क) बाह्य शुद्धि (ख) आन्तरिक शुद्धि।

महर्षि दयानन्द ''पञ्चमहायज्ञविधि'' में लिखते हैं-

(क) आदौ शरीरशुद्धि: कर्त्तव्या सा बाह्या जलादिना-

सर्वप्रथम शारीरिक शुद्धि करनी चाहिए। वह है जलादि से बाहरी शुद्धि।

मनु महाराज के अनुसार-
अद्‌भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति।।
मनु. 5/109

जल से शरीर की शुद्धि होती है।

वस्तुत स्नान का माध्यम जल है। शुद्ध, स्वच्छ जल होने पर शरीर भी शुद्ध, पवित्र, स्वच्छ और स्वस्थ बनेगा। यह पूर्णत: स्पष्ट है।

गंगादि पर्वतीय नदियों में स्नान करने से भी शरीर की शुद्धि होगी। वह भी तब, जब जल पूर्ण रूपेण निर्मल और स्वच्छ होगा। वर्तमान समय में तो गंगा, यमुना सदृश पवित्र नदियां इतनी प्रदूषित हो चुकी हैं कि उनके जल से स्नान ही नहीं किया जा सकता, जल-पान की बात कौन करे?

गंगा आदि नदियों के तट पर बसे हरिद्वार, अयोध्या, काशी, प्रयाग, मथुरा आदि को तीर्थ क्यों कहा गया? इसका भी कारण है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि, विद्वान्, ज्ञानी, महात्मा सदृश महापुरुष नदी-तटों पर रहते थे। नदी-तट पर रहने से उनके सम्मुख जल की समस्या न थी। घने वन थे। जहां फल, फूल, कन्दमूल आदि भोजनार्थ मिल जाता था। गौएं पालते थे। शुद्ध गो-दुग्ध मिल जाता था। आवश्यकतानुसार अन्न भी सुलभ था। जीवन खुशहाल था। वेदशास्त्रों का पठन-पाठन, योगाभ्यास, संध्यावन्दन, यज्ञ आदि सुकार्य चलते रहते थे। विभिन्न अवसरों पर जन सामान्य लोग भी आते थे। उनका सत्संग करते थे। आध्यात्मिक चिन्तन में लीन रहते थे। नदियों के शुद्ध-पवित्र जल में स्नान करते थे। जलपान भी करते थे। नदियां क्योंकि पर्वतों से नीचे आती थीं। अत: वर्षाकाल में उनका पानी पर्वतों पर विद्यमान जड़ी-बूटियों, औषधीय पेड़-पौधों में से गुजरता हुआ मैदानी क्षेत्रों में आता था। जिससे वह जल उन औषधीय गुणों से परिपूर्ण होता था। जो स्वास्थ्य के लिए हितकारी था। लोग अनेकश: स्नान करके शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हो जाते थे। जल अनेक गुणों से पूरित होने से लोग अपने घरों को ले जाते थे। समय-समय पर उसका प्रयोग करते थे। इस प्रकार से यात्री महात्माओं के सत्संग से आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करते थे और औषधीय जल में स्नान करने से स्वास्थ्य लाभ भी मिलता था। इसीलिए इन स्थानों का नाम तीर्थ पड़ गया। महर्षि दयानन्द तीर्थ की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि।।

मनुष्य जिनसे दु:खों से तरें, उनको तीर्थ कहते हैं।

वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि, माता, पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभगुण-कर्म दु:खों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं। और जो जल-स्थलमय हैं, वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते।

स. प्र. समु.।।, पृ. 270

सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में ''स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकाश'' के 24वें क्रमांक में तीर्थ को स्पष्ट करते हैं-

''तीर्थ'' जिससे दु:ख सागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभकर्म है, उसी को तीर्थ समझता हूँ, इतर जलस्थल आदि को नहीं।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट हैं कि तीर्थ के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द के विचार प्राचीन ऋषियों के विचारों से पूर्णत: मेल खाते हैं। वेदादि शास्त्रों के अध्ययन और आचरण से ही मुक्ति हो सकती है। केवल तीर्थ, सरोवर आदि में स्नान करने से नहीं।

गरुड़ पुराण से भी यही बात स्पष्ट होती है कि केवल तीर्थ स्नान से मुक्ति नहीं होती-

तृणयर्पोदकाहारा: सततं वनवासिन:।

जम्बुकाखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्ति किम्।।67।।

आजन्ममरणान्तं च गंगादित-टिनीस्थिता:।

मण्डूक मत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवन्ति किम्।।68।।

पारावता: शिलाहारा: कदाचिदपि चातका:।

न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्ति किम्।।69।।

तस्मादित्यादिकं कर्म लोकरञ्जनकारकम्।

मोक्षस्य कारणं साक्षात् तत्त्वज्ञानं खगेश्वर।।70।।

ग. पु. अ. 16

घास, पत्ता, जल का आहार करते हुए वन में रहने वाले जम्बूक (गीदड़), चूहा, मृग आदि क्या तपस्वी होते हैं, अर्थात् नहीं।

जन्म से मरण तक गंगादि नदियों में स्थित मेंढक, मछली आदि क्या कहीं योगी हो जाते हैं अर्थात् नहीं हो जाते।

पारावत पक्षी एक-एक कण का आहार करते हैं और पपीहा भूमि पर गिरे जल को कभी नहीं पीते तो क्या वे व्रती हो जाते हैं? अर्थात् नहीं होते।

अत: ये सब कृत्य लोकरंजन के लिए हैं। मोक्ष का कारण तो साक्षात् तत्त्वज्ञान ही है।

मोक्ष गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिका: स्वर्गतिं नरा:।

पापिनो दुर्गतिं यान्ति संचरन्ति खगादय:।। ग. पु. अ. 16/116

तत्त्व को जानने वाले मोक्ष को प्राप्त होते हैं, धर्म करने वाले स्वर्ग अर्थात् सुख को प्राप्त होते हैं। पापी दुर्गति को प्राप्त होते हैं और पक्षी आदि यहीं उत्पन्न होते हैं और यहीं मरते हैं।

क्योंकि गंगादि में स्नान से मुक्ति का प्रसंग चल रहा है। अत: कुछ और प्रमाण प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा-

ज्ञानह्रदे सत्य जले राग द्वेषमलापहे।

य: स्नाति मानसे तीर्थे सवै मोक्षमाप्नुयात्।।

ग. पु. 16/111

ज्ञान रूपी जलाशय में सत्यरूपी जल है जो राग द्वेष रूपी मल को दूर करने वाला है, ऐसे मानस तीर्थ में जो स्नान करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है।

अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्त्व ज्ञात्वार्थ बुद्धिमान्।

पलालमिव धान्यार्थी सर्व-शास्त्राणि संत्यजेत्।।

ग. पु. 16/85

बुद्धिमान् पुरुष वेदशास्त्रों का अभ्यास करके तत्त्व को जानकर अन्य सब शास्त्रों को इस प्रकार छोड़ दे जैसे धान को चाहने वाला पुआल को छोड़ देता है।

महापुण्य प्रभावेण मानुषं जन्म लभ्यते।

य: तत् प्राप्य चरेद्धर्मं संयाति परमांगतिम्।।95।।

अत्यन्त पुण्य के प्रभाव से मनुष्य जन्म मिलता है। जो मनुष्य-शरीर पाकर धर्म करता है, वह परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

महात्मा तुलसीदास जी कहते हैं-

बड़े भाग्य मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सद्‌ग्रन्थन गावा।।

अविज्ञाय नरो धर्मं दु:खमायाति याति च।

मनुष्य जन्म साफल्यं केवलं धर्मसेवनम्।।96।।

जो मनुष्य धर्म को नहीं जानता, वह दु:ख से आता है और चला जाता है। मनुष्य जन्म की सफलता केवल धर्म-सेवन में है।

गृहादर्था निवर्तन्ते श्मशानात् सर्वबान्धवा:।

शुभाशुभं कृतं कर्म गच्छन्तमनुगच्छति।।102।।

घर पर ही धनधान्य (अर्थ) साथ छोड़ देते हैं और श्मशान से सब भाई-बन्धु लौट जाते हैं। केवल किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म ही साथ जाता है।

शरीरं वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहास्थिम्।

पुण्यं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानव:।।103।।

ग. पु. अ. 8

शरीर आग से जला दिया जाता है, केवल किया हुआ कर्म ही साथ रहता है। उसी पुण्य या पाप रूप कर्म को मनुष्य भोगता है।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।। म. पु. 5/57

किए हुए शुभ-अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है, बिना भोगे लाखों कल्पों तक कर्मफलक्षीण नहीं होता।

चारास्ते धर्मराजस्य मनुष्याणां शुभाशुभम्।

मनोवाक् कायजं कर्म सर्वं जानन्ति तत्त्वत:।। ग. पु. 3/12

कायस्थं तत्र पश्यन्ति पापं पुण्यं च सर्वश:।।3/17

धर्मराज से दूर मनुष्यों के मन, वचन और शरीर से किए हुए शुभ-अशुभ सम्पूर्ण कर्मों को भली भांति जानते हैं। ये शरीर में रहकर सब प्रकार के पाप और पुण्य को देखते रहते हैं।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

"प्रचलित तीनों वादों (विचारों) की संक्षिप्त व्याख्या"

ले.-पं. खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड सन्ज १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दो तल्ला) कोलकत्ता-700007

ईश्वर ने जब से सृष्टि रची है तब से आज तक तीन सत्ताएँ ही अनादि व अनन्त मानी जाती है जिनमें पहली है ईश्वर चेतन सत्ता, दूसरी है जीव चेतन सत्ता और तीसरी है प्रकृति जड़ सत्ता। ईश्वर ने जीव के लिए प्रकृति द्वारा यह सृष्टि रची जिसकी अवधि चार अरब 32 करोड़ है। इसमें जीव अपने कर्मानुसार अनेकों योनियों पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीट-पतंग आदि में जन्म लेता हुआ अन्त में मनुष्य योनि में आता है। पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीड़े-मकौड़े तथा वनस्पति आदि सभी भोग योनि हैं। केवल मनुष्य योनि ही एक भोग तथा कर्म योनि है। इसी योनि में मनुष्य यदि अपने जीवन भर शुभ कर्म यानि परोपकार के कर्म करे तो उसको मृत्यु के बाद मोक्ष प्राप्त हो जाता है। महर्षि जी के आने से पहले मोक्ष की कोई अवधि नहीं थी, वह हमेशा के लिए ईश्वर के सान्निध्य में परम आनन्द की अनुभूति करते हुए सदा के लिए मोक्ष का आनन्द लेता रहेगा, ऐसी धारणा थी परन्तु महर्षि दयानन्द जी ने वेदों के आधार पर मोक्ष की भी अवधि निर्धारित की है। उनका मानना है कि मोक्ष किन्हीं शुभ कर्मों का फल है। यदि शुभ कर्म करने की कोई अवधि है तो फल की भी अवधि होनी निश्चित है, चाहे व कितनी भी बड़ी या छोटी हो, अवधि अवश्य होगी। महर्षि जी ने वेदों से जानकर मोक्ष की अवधि ३१ मील १० खरब ४० अरब की बताई है। इसलिए मोक्ष जाने वाली जीव आत्मा इतनी अवधि तक ईश्वर के सान्निध्य में परमानन्द की प्राप्ति करती रहेगी फिर पुन: धरती पर ईश्वर की न्याय व्यवस्था के अनुसार आना ही पड़ेगा। यदि मनुष्य योनि से जीव मोक्ष में नहीं जाता है तो उसकी दो गतियां और है। पहली गति यदि उसने मनुष्य जीवन में 50 प्रतिशत या इससे अधिक शुभ कर्म किये हैं तो वह पुन: शुभ कर्मों के प्रतिशत के हिसाब से ही मनुष्य योनि में जायेगा यानि जितने शुभ कर्म बढ़ते जायेंगे उतनी ही मनुष्य योनि अच्छी मिलती जायेगी। यदि मनुष्य जीवन में 50 प्रतिशत से शुभ कर्म कम और बुरे कर्म अधिक किये हैं तो उसको कर्मों के हिसाब से पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीड़े-मकौड़े तथा वनस्पति की हल्की भोग योनि मिलती जायेगी।

मनुष्य योनि में मनुष्य तीन किस्म के वाद (विचार) रखता है जिसके अनुसार उन विचारों को मान्यता देते हुए अपना जीवन चलाता है। वे तीन किस्म के विचार (वाद) है (१) त्रैतवाद (२) द्वैतवाद (३) अद्वैतवाद। इन तीनों की अलग-अलग व्याख्या इसी भाँति है।

१. त्रैतवाद-सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत सभी आगे तक त्रैतवाद जो वेदों के अनुसार है, इसकी मान्यता रहीं। इस त्रैतवाद में ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन को आदि व अनन्त सताएँ मानी जाती हैं परन्तु महाभारत के भीषण युद्ध में अधिकतर वैदिक विद्वान्, आचार्य, वीर, बलवान, योद्धा व बुद्धिमान मृत्यु को प्राप्त हो गये जिससे वेदों का पढ़ना-पढ़ाना प्राय: लुप्त हो गया और कम विद्वान् भी विद्वान् समझे जाने लगे। उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए अनेक मत-मतान्तर चला दिये जिसमें सभी लोग फँसकर वेद-ज्ञान से भटक गये तब से अज्ञान, अन्धविश्वास पाखण्ड का बोलबाला हो गया और अनेक वेद विरुद्ध प्रथाऐं जैसे मूर्त्तिपूजा, श्राद्ध, अवतारवाद, तीर्थभ्रमण अनेक मत-मतान्तर चल पड़े जिससे लोग कर्त्तव्य भाव से कार्य करना छोड़ अपने स्वार्थ के लिए काम करने लगे। जिससे केवल भारतवासियों का ही नहीं बल्कि विश्व के लोगों का चारित्रिक पतन होने लगा।

ईश्वर की अपार कृपा से १२ फरवरी १८२५ में महर्षि देवदयानन्द का जन्म हुआ और उन्होंने १८६० से १८६३ तक सद्‌गुरू स्वामी विरजानन्द की गोद में बैठकर, वेदों के मन्त्रों का सहीं अर्थ करना सीखा और वेदों के आधार पर त्रैतवाद का पुन: प्रचलन किया और द्वैतवाद व अद्वैतवाद वालों को शास्त्रार्थ में पराजित करके त्रैतवाद की पुन: स्थापना की।

२. द्वैतवाद-महाभारत के बाद २५०० वर्षों तक त्रैतवाद ही चलता रहा बाद में मूर्ख और स्वार्थी पण्डितों ने वेदों के मन्त्रों का अर्थ, सही न लगाकर गलत अर्थ लगाने आरम्भ कर दिये जिससे उन्होंने यज्ञों में पशु बलि देना आरम्भ कर दिया। उसी समय महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ। वे अहिंसावादी व दयावान व्यक्ति थे। उनमें यज्ञों में पशुबलि होते हुए नहीं देखा गया। उसने यज्ञ करने वाले पण्डितों से पूछा कि आप यज्ञों में पशुबलि क्यों देते हो। उन्होंने कहा कि पशु बलि देना वेदों में लिखा है, तब महात्मा बुद्ध ने कहा कि मैं ऐसे वेदों को नहीं मानता जिनमें पशुबली देना लिखा हो। तब पण्डितों ने कहा कि वेद तो ईश्वर के बनाए हुए हैं तब बुद्ध ने कहा कि जो ईश्वर जीव हिंसा को ठीक मानता है, मैं ऐसे ईश्वर को भी नहीं मानता। तब महात्मा बुद्ध ने अपना बौद्ध धर्म अलग चलाया जिसमें केवल जीव और प्रकृति को माना, ईश्वर की सत्ता को नहीं माना। उसने कहा सृष्टि स्वयं ही बनती और स्वयं ही नष्ट होती है। इसको बनाने वाला कोई नहीं है। जीव के किये हुए कर्मों का फल प्रकृति ही देती है। इसमें ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं। इसके बाद महावीर स्वामी आये उन्होंने भी अहिंसा के हिसाब से जैन धर्म चलाया। उन्होंने भी केवल जीव और प्रकृति की सत्ता को माना और ईश्वर की सत्ता को नहीं माना। बाद में इस युग में कम्यूनिष्ट हुए। इन्होंने भी केवल जीव और प्रकृति की सत्ता को माना, ईश्वर की सत्ता को नहीं। इन दो सत्ताओं को मानने वालों को द्वैतवादी कहते हैं।

३. अद्वैतवाद-करीब २५०० वर्ष पहले बौद्ध और जैन के समय में दक्षिण भारत में आदि भष्टाचार पैदा हुए जो उपनिषदों, दर्शनों, ब्राह्मण ग्रन्थों व स्मृतियों के प्रकाण्ड विद्वान् थे परन्तु वेदों तक उनकी पहुँच नहीं थी। इसलिए उन्होंने बौद्ध तथा जैनियों को परास्त करने के लिए अद्वैतवाद का प्रचलन किया जिसमें केवल एक ईश्वर की सत्ता को माना गया है। जीव को ईश्वर का अंश और प्रकृति को स्वप्नवत् माना है यानि स्वप्न की कोई सत्ता नहीं होती उसी प्रकार प्रकृति की भी कोई सत्ता नहीं। सृष्टि केवल स्वप्नवत् है इसकी कोई सत्ता नहीं। हालांकि यह मानना गलत है परन्तु द्वैतवाद से तो अच्छा है इसलिए आदि शंकराचार्य ने बौद्धों व जैनियों को हराकर अद्वैतवाद को प्रचलित किया जो अभी तक भी चलता आ रहा है। मूर्तिपूजा भी उसी समय चलाई गई थी कारण जैनी मूर्तिपूजक थे। हिन्दू मूर्त्तिपूजा का सरल मार्ग देखकर जैनी बनते जा रहे थे, इसलिए हिन्दू पण्डितों ने सोचा कि हिन्दू यदि ऐसे ही जैन धर्म को अपनाते गये तो हिन्दू धर्म समाप्त हो जायेगा। इसलिए उन्होंने राम और कृष्ण को ईश्वर का अवतार बतलाकर उनकी पूजा करवानी आरम्भ कर दी तभी से मूर्तिपूजा होनी आरम्भ हो गई जो वैदिक धर्म को समाप्त करने में काफी सहयोगी बनी। महर्षि दयानन्द ने आकर मूर्तिपूजा का खण्डन किया और मूर्तिपूजा को ईश्वर साक्षात्कार करने के लिए सीढ़ी न बतलाकर खाई बतलाया और मूर्तिपूजा का डटकर विरोध किया और वैदिक धर्म की स्थापना की जिससे त्रैतवाद की भी मान्यता हो गई।

पृष्ठ 8 का शेष-सभा कार्यालय में एक...

शिक्षकों को अपने दायित्व का पालन करते हुए समाज निर्माण में अपना योगदान देने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। उन्होंने कहा कि वर्तमान शिक्षा पद्धति के द्वारा अच्छे नागरिक का निर्माण करना सम्भव नहीं है क्योंकि शिक्षकों और विद्यार्थियों में आपसी तालमेल का अभाव है। शिक्षक अपने कर्त्तव्यों को नहीं जानता है और विद्यार्थी उचित मार्गदर्शन के अभाव में दिशाहीन है। अच्छे शिक्षक के मार्गदर्शन में व्यक्ति अपना एवं समाज का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। उत्तम शिक्षा के इस सर्वातिशयी महत्व को हमें स्वीकार करना चाहिए। आर्य विद्या परिषद पंजाब के रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट ने सभी का धन्यवाद करते हुए कहा कि इस शिक्षक अभिविन्यास कार्यक्रम का प्रयोजन शिक्षकों को शिक्षण के महत्वपूर्ण पहलुओं से अवगत कराना है। शिक्षकों और विद्यार्थियों के अन्दर आज जो दूरी व मतभेद देखने को मिलते हैं उन्हें दूर करने के लिए शिक्षकों को तैयार करना है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में आर्य विद्या परिषद पंजाब पूरे पंजाब में इस प्रकार का अभियान चलाऐगी। श्रीमती ज्योति शर्मा जी प्रधान आर्य कन्या सी.सै.स्कूल बस्ती नौ जालन्धर ने भी सम्बोधित किया। मंच का संचालन श्री विनोद भारद्वाज जी नवांशहर ने बहुत अच्छे ढंग से किया। इस कार्यक्रम में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उप प्रधान श्री सरदारी लाल जी, श्री सुदेश कुमार जी मंत्री, श्री विपिन शर्मा जी मंत्री, श्री रणजीत आर्य जी मंत्री, सभा कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी की धर्मपत्नी श्रीमती गुलशन शर्मा जी, श्रीमती परवेश शर्मा जी, श्रीमती इन्दु परूथी जी, श्री विशाल परूथी जी एडवोकेट, नवांशहर से श्री ललित मोहन पाठक, श्री ललित शर्मा जी, श्री कुलवन्त शर्मा जी, श्री जिया लाल शर्मा जी, श्री वीरेन्द्र सरीन जी, श्री अमर सिंह जी भी उपस्थित थे।

विदुरनीति: नीति भी दर्शन भी

ले.-डॉ. सत्यव्रत वर्मा

महाभारत विश्वसाहित्य की अद्‌भुत रचना है। एक लाख श्लोकों की यह बृहदाकार शतसाहस्री संहिता विषय की विराट्ता की दृष्टि से भी कम चमत्कारजनक नहीं है। इसके मूल प्रतिपाद्य-कौरव-पाण्डवों के युद्ध के चारों ओर कालक्रम से इतनी विशाल तथा वैविध्यपूर्ण सामग्री जुड़ गयी है कि महाभारत महाकाव्य (एपिक) न रह कर ज्ञान-विज्ञान का बृहत्काय विश्वकोष बन गया है। वर्तमान रूप में यह इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, मोक्षशास्त्र, पंचम वेद, वस्तुत: सम्पूर्ण साहित्य है। भगवान् वेदव्यास की यह उक्ति 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' (महाभारत में जो है वह अन्यत्र मिल सकता है, किन्तु जो इसमें नहीं है वह अन्यत्र ढूँढे भी नहीं मिलेगा) महाभारत के स्वरूप की अनन्त विविधता की सच्ची परिचायक है। वस्तुत: महाभारत अनेक तेजस्वी ग्रन्थों का दीप्तिमान् समुच्चय है। इसमें अन्तर्निहित भगवद्‌गीता, अनुगीता, विष्णुसहस्र-नाम, सनत्सुजातीय, शतरुद्रिय, भुवनकोश पर्व आदि स्वतन्त्र कृतियाँ है और स्वतन्त्र रूप में भी उनका गौरव महाभारत से कम नहीं है। भगवद्‌गीता को तो हिन्दुधर्म के प्रतिनिधि तथा सार्वभौम दार्शनिक ग्रन्थ के रूप में जो प्रतिष्ठा मिली है उसकी तुलना उसी से की जा सकती है। शंकराचार्य द्वारा भगवद्‌गीता सनत्सुजातीय तथा विष्णुसहस्रनाम पर भाष्यों की रचना इनके सर्वातिशायी महत्त्व की स्वीकृति है।

सनत्सुजातीय के समान विदुरनीति भी महाभारत के उद्योगपर्व का अंश है। इसका दूसरा नाम प्रजागर पर्व है। आठ अध्यायों की यह विदुरनीति अथवा प्रजागर पर्व वस्तुत: प्राचीन भारतीय 'नीति' पर महात्मा विदुर का विस्तृत प्रवचन है। इसमें निस्सन्देह लोकव्यवहार, धर्म, अध्यात्म, शील, सदाचार, सत्संगति, वाक्संयम, अहिंसा, क्षमा, आर्जव, इन्द्रियसंयम, कर्म, त्याग, राजधर्म आदि उन विषयों का अमृतोपम निरूपण है, जिनका समाहार प्राचीन मान्यता के अनुसार 'नीति' के अन्तर्गत होता है और जिन्हें आत्मसात् करने से मानवजीवन अधिक सार्थक, उद्देश्यपूर्ण, जीवन्त, तथा उदात्त बनता है, किन्तु विदुरनीति को सामान्य नीतिग्रन्थ समझना भूल होगा। विशेषज्ञों के अनुसार विदुर के प्रवचन के व्याज से महाभारतकार ने विदुरनीति में एक भरे-पूरे दार्शनिक मत का निरूपण किया है "जिसे प्रज्ञावाद या प्रज्ञा का दर्शन कहा जा सकता। यह प्रज्ञावाद उन अनेक मतों की काट था, जो भाग्य, निर्वेद, कर्मत्याग पर आश्रित समाजविरोधी आदर्शों का प्रतिपादन करते थे। प्रज्ञावाद पुरुषार्थ, सत्कर्म, धर्म, गृहस्थ, प्रजापालन आदि आदर्शों पर आश्रित था, जिनसे जीवन का संवर्धन होता है, निराकरण नहीं। प्रज्ञावाद का इतना सुन्दर समन्वित विवेचन अन्यत्र कहीं भी भारतीय साहित्य में नहीं मिलता।"

विदुरनीति का बीज धृतराष्ट्र की अस्थिर बुद्धि के किसी कोने में छिपा है। वह पाण्डवों की आधे राज्य की मांग के औचित्य को दिल से स्वीकार करता है परन्तु पुत्र-मोह के झंझावात में फंस कर उसका विवेक हवा हो जाता है। पाण्डवों को उनका न्यायोचित हक देने से क्या लाभ होगा, न देने से क्या हानि होगी, इस उथल-पुथल के बीच द्रुपदराज के पुरोहित के कड़े शब्द उसे और विचलित कर देते हैं। आखिर उसने संजय को उपप्लव (नगर का नाम) भेज कर युधिष्ठिर का मन टटोलने का निश्चय किया। संजय को उसने बातचीत का बहुत सीमित अधिकार दिया था, पर संजय ने युधिष्ठिर को युद्ध का विचार छोड़ कर धर्म की पालना करने और राज्य न मिलने की स्थिति में भिक्षावृत्ति से जीवन यापन करने की धृष्ट सलाह देकर बात को और उलझा दिया। संजय की धर्म की छद्‌म रट से युधिष्ठिर का धैर्य भी कुछ कम्पित हुआ किन्तु फिर भी परस्पर की प्रीति और शान्ति को सर्वोपरि मानते हुए उन्होंने कहा कि पाँच भाइयों के लिए पांच गांव लेकर भी मुझे सन्तोष होगा। किन्तु संजय के इस गोलमाल को समझकर श्रीकृष्ण ने उसे लगभग चेतावनी के स्वर में कह दिया कि पाण्डवों को यदि अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए मृत्यु का भी सामना करना पड़ा, वे उससे पीछे नहीं हटेंगे। हस्तिनापुर लौट कर संजय धृतराष्ट्र के राजभवन में पहुँचा और कुछ कुशल-क्षेम निवेदन कर यह कह कर वहां से चला गया कि युधिष्ठिर का मन्तव्य मैं कल कौरवों के सामने सभा में प्रस्तुत करूँगा। संजय से तत्काल पूरी बात न जान कर धृतराष्ट्र का निर्बल मन अनर्थ की आशंका से भर गया। आशंका, भय और चिन्ता की धाराओं में डूबते-उतरते उसकी नींद चली गयी। वह प्रजागर का शिकार बन गया। उसने अपने नित के साथी प्रज्ञावान् विदुर की प्रज्ञा की नौका पर बैठ कर इस संकट की उदधि को पार करने का निश्चय किया। महाबुद्धिमान् विदुर ने धर्म, अध्यात्म, लोक-व्यवहार, ऋजु आचरण, सच्चारित्र्य, लोक-परलोक, शम-दम, राजधर्म आदि के बृहत् परिप्रेक्ष्य में अपनी प्रज्ञा के समूचे ओज से धृतराष्ट्र को सत् और न्याय के राजपथ पर लाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु सब अकारथ। शायद ही किसी सदाशय हितैषी का उद्योग इस प्रकार विफल हुआ हो। यह वस्तुत: दो विरोधी विचारधाराओं की टक्कर थी। अकर्मण्यता और भाग्यवाद की चट्टान से टकरा प्रज्ञावाद का पौरुष हतोत्साह हो गया-

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित्।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम्।। विदुरनीति, 8.32.

धृतराष्ट्र निपट कान का रसिया था। इस कान से सुना, उससे निकाल दिया और उसने निर्भ्रान्त शब्दों में विदुर को चेतावनी भी दी थी- **तस्माद् वदत्वं श्रवणे धृतोऽहम्** (7.1)।

विदुरनीति की 'नीति' वस्तुत: राजनीति के बृहत् चौखटे में फिट है। यह एक ऐसी विशेषता है जो इसे अन्य नीतिग्रन्थों की तुलना में विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती है। विदुरनीति में जिन उदात्त भावों का रोचनात्मक विधि से प्रतिपादन हुआ है उनका चरम उद्देश्य मोहान्ध धृतराष्ट्र को इस तथ्य से उत्प्रेरित करना है कि कुरुवंश का हित आपसी प्रीति और ऐक्य में निहित है और पाण्डवों को राज्य का उनका न्यायोचित आधा भाग देकर उसे सहजता से प्राप्त किया जा सकता है। धर्मनिष्ठ पाण्डवों के साथ पुत्रवत् व्यवहार करने से युद्ध के ताण्डव से बचना सम्भव है। कौरव लताओं के समान हैं, पाण्डव हिमालय के शाल हैं। महावृक्ष के आश्रय के बिना लताएं फल-फूल नहीं सकतीं। कौरव वन हैं, पाण्डव उसमें रहने वाले व्याघ्र हैं। एक-दूसरे के बिना न वन सुरक्षित रहता है, न बाघ। इस महनीय भाव को बारम्बार रेखांकित कर इसे प्रकारान्तर से विदुरनीति का 'साध्य' स्वीकार किया गया है।

विदुरनीति में जीवन और जगत् के उन आदर्शों, उदात्त भावों, उज्ज्वल गुणों, मान्यताओं और भव्यताओं का अनोखा ठाट है जो मानवीय बुद्धि को विलक्षण प्रकर्ष प्रदान करती हैं, जिससे यह हाड-मांस का नश्वर प्राणी, काया के बन्धन में रह कर भी ओजोमय भ्राजिष्णु पद प्राप्त कर सकता है। उनकी गरिमा और रसमयता का आस्वादन मूल के अध्ययन से ही किया जा सकता है, किन्तु नवनीत-स्वरूप जो भाव विदुरनीति के क्षीरोदधि से तिर कर ऊपर आएँ, उन्हें समन्वित रूप से निबद्ध करना निस्सन्देह उपयोगी है।

1. पण्डित-

विदुरनीति के आरम्भ में पण्डित के स्वरूप की मार्मिक व्याख्या की गई है। पण्डित को प्राज्ञ तथा प्रज्ञावान् भी कहते हैं। धृतराष्ट्र को महाप्राज्ञ विशेषण से सम्बोधित किया गया है। वस्तुत: पण्डित या प्राज्ञ के गुणों के व्याज से विदुर ने प्रज्ञा के गौरव की व्याख्या की है। प्रज्ञा का सीधा अर्थ व्यावहारिक समझदारी है। उस प्रज्ञा अथवा पण्डा से युक्त व्यक्ति ही पण्डित जैसी गौरवमयी उपाधि का पात्र है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ 2 का शेष-श्रावणी उपाकर्म एवं ऋषि तर्पण

प्रारम्भ हुई, साथ ही अबला महिलाओं ने वीरों के दाहिने हाथ में रक्षा सूत्र बांधकर उनको भाई समान मान कर अपनी रक्षा की व्यवस्था की। इसी समय से बहिनों द्वारा भाईयों के हाथ में रक्षा बन्धन बांधने की प्रथा भी प्रारम्भ हो गई और इस पर्व को रक्षा बन्धन पर्व के नाम से जाना जाने लगा। इस पर्व का वेदाध्ययन से सीधा सम्बन्ध है। श्रावणी उपाकर्म मनाने का एक मात्र उद्देश्य यह है कि इस दिन से हम वेदाध्ययन प्रारम्भ कर दें। आर्य पर्व पद्धत्ति में सांकेतिक रूप से चारों वेदों के प्रथम तथा अन्तिम मंत्र देकर उन्हें पढ़ने की प्रेरणा दी गई है।

अब इस विषय को यहीं विराम देकर ऋग्वेद में इस पर्व के विषय में परोक्ष रूप से जो कुछ कहा गया है उसका पाठकों को परिचय दे रहा हूँ। सबसे अत्यन्त महत्वपूर्ण बात तो यह है कि वेद में शिक्षा सभी के लिए है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल स्त्रियां आदि सम्पूर्ण मानव समाज के लिए वेद का अध्ययन निर्बाध रूप से खुला हुआ है। यजुर्वेद अध्याय 26 मंत्र 2 में स्पष्ट कहा गया है-

यथेमां वाचं कल्याणी-मावदानी जनेभ्यः।

ब्रह्मराजन्यभ्यां शूद्राय चार्याय स्वाय चारणाय च।

अर्थ-परमेश्वर कहा है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) मनुष्य मात्रा के लिए (इमाम्) इस (कल्याणीम्) सबका कल्याण करने वाली और मुक्ति का सुख देने वाली (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ वदानि) उपदेश करता हूँ। इस वेद वाणी का उपदेश ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, सेवक, स्त्री और चाण्डाल तक तुम भी वैसे ही किया करो।

यह वर्षा ऋतु के मध्य में मनाया जाने वाला पर्व है। ऋग्वेद मण्डल 7 सूक्त 103 से इस पर्व को मनाने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। पाठकों के लिए हम संक्षेप में ऋग्वेद में दिये गये विवरण से परिचित कर रहे हैं।

दिव्या आपो अभि यदेन मायन्दृतिं शुष्कं सरसी शयानम्।

गवामह न मन्युर्वत्सि नीनां मण्डूकानां वग्नूरत्रा समेति।। ऋ. 7.103.2

भावार्थ-इस ऋचा में यह दर्शाया गया है कि वर्षा ऋतु के साथ मेंढक आदि जीवों का ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है कि जैसा इन्द्रियों का इन्द्रियों की वृत्ति के साथ होता है। जैसे इन्द्रियों की यथार्थ ज्ञानरूप प्रमादि वृत्तियां इन्द्रियों का मण्डन करती हैं इसी प्रकार से ये मेंढक वर्षा ऋतु का मण्डन करते हैं। दूसरी बात इस ऋचा से यह भी स्पष्ट होती है कि मण्डूकादि का जन्म प्रारम्भ में अमैथुनी होता है। प्रकृति रूप बीज से ही ये उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु इसके बाद मैथुन से ही आगे उत्पत्ति क्रम चलता है।

यदिमेनां उशतो अभ्य वर्षीत्तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम्।

अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति।।3।।

भावार्थ-वर्षा में ये जीव ऐसे आनन्द से विचरते हैं और अपने भावों को अपनी चेष्टा तथा वाणियों से दर्शाते हुए पुत्रों के समान अपने वृद्ध पितरों को पास जाते हैं। इसमें यह शिक्षा भी दी है कि जैसे क्षुद्र जीव जन्तु भी अपने वृद्धों के पास जाकर अपने भाव व्यक्त करते हैं वैसे हमें भी अपने वृद्धों के पास अपने भावों को प्रकट करना चाहिए।

अन्यो अन्यमनु गृम्णात्येनोरपां प्रसर्गेसदमं दिशाताम्।

मण्डूको पदभिवृष्टः कनिष्कन्यृश्निः संपृक्ते हरितेन वाचम्।।4।।

भावार्थ-परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जीवों। तुम प्रकृति सिद्ध वर्षा आदि ऋतुओं में नूतन-नूतन भावों के ग्रहण करने वाले जल जन्तुओं से शिक्षा प्राप्त करो कि वे जिस प्रकार हर्षित होकर उद्योगी बनते हैं वैसे ही तुम भी उद्योगी बनो।

यदेशामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येन वदति शिक्षमाणः।

सर्वतदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु।।5।।

भावार्थ-परमात्मा उपदेश करते हैं कि जिस प्रकार जल जन्तु भी एक दूसरे की चेष्टा से शिक्षा लाभ करते हैं और एक ही भाषा सीखते हैं वैसे तुम भी परस्पर मिलकर शिक्षा लाभ लेते हुए एक प्रकार की भाषा में बातचीत किया करो।

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम्।

समानं नाम विभ्रतो विरूपाः पुरूत्रावाचं पिपि शुर्वदन्तः।।6।।

भावार्थ-परमात्मा उपदेश करते हैं कि जिस प्रकार जन्तु भी स्वर भेद, आकारभेद और वर्ण भेद रखते हुए जाति भेद और वाणी भेद नहीं रखते हैं इसी प्रकार से हे मनुष्यों। तुम प्राकृत जीवों से शिक्षा लेकर वाणी और जाति का एकत्व दृढ़ करो।

अब एक ऋचा और देकर विषय को विराम देगें।

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरोन पूर्वमभितो वदन्तः।

संवत्सरस्य तदहः परष्ठि यन्मण्डूकाः प्रावृणीणं बभूव।।7।।

इस ऋचा में परमात्मा ने वैदिकोत्सव मनाने का उपदेश दिया है। कहा है कि मनुष्यों तुम वर्षा ऋतु में प्रकृति के मनमोहक दृश्य को देख कर वैदिक सूक्तों से उपासना करो।

आर्य समाज ने परमात्मा के इस संदेश को ठीक से समझ कर वर्षा ऋतु के ठीक मध्य में श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को श्रावणी उपाकर्म मना कर फिर एक सप्ताह वेद प्रचार के लिए नियत कर दिया है।

पृष्ठ 4 का शेष-यज्ञ से पूर्व शुद्धि

वे कहते हैं-

कृतानि यान पापानि पुष्माभिऋ सुबहून्यपि।

तानि पापानि दुःखस्य कारणं न च वञ्चना।।28।।

मूर्खेऽपि पण्डिते वापि दरिद्रे वा प्रियान्विते।

सबले निर्बले वापि समवर्ती यमः स्मृत।।29।।

ग. पु. अ. 3

तुम्हारे किए हुए बहुत से पाप ही तुम्हारे दुःख के कारण हैं, इसमें कुछ धोखा नहीं किया जाता है।

मूर्ख या पण्डित में, दरिद्रया धनवान् में और प्रबल या निर्बल में यमराज समान वर्ताव करने वाले हैं।

गरुड़पुराण के उद्धृत प्रमाणों से पूर्णतः स्पष्ट हो गया है कि मुक्ति सुकर्मों से ही होती है। पापों का फल भोगना ही पड़ता है, छुटकारा नहीं मिलता। अतः जो महानुभाव यह समझते हैं कि गंगा आदि तीर्थ-स्नान से मुक्ति हो जाएगी, उन्हें यह भ्रान्तधारणा मन-मस्तिष्क से निकाल देनी चाहिए।

जल की ही आवश्यकता है। चाहे वह घर का हो या नदी अथवा सरोवर का। जल से तो शरीर की ही शुद्धि होनी है-यह मन में पूरी तरह बिठा लेना चाहिए। इसी में सबका कल्याण है।

यदि मुक्ति के नहाना है तो ज्ञानगंगा में नहाइए-

जब ज्ञान की गंगा में नहाया, तो मन में मैल जरा भी न रहा।

प्रकाश हुआ मन में उसके, कोई भेद उससे छिपा न रहा।।

हुआ ध्यान में ईश्वर के जो महान, उसे कोई क्लेश लगा न रहा।।

एक अन्य कवि के शब्दों में-

मूर्ख मन तो मैला वैसा ही रहा तेरा।

गंगा रोज नहाया तो क्या हुआ।।

आइए, एक और काव्यदारा में स्नान कीजिए-

गंगा नहाने कभी काशी, कभी हर की पौड़ी गया,

गंगा नहाते ख्याल ये आ ही गया।

तन को धोया, मगर मन को धोया नहीं,

फिर गंगा नहाने का क्या फायदा।

किसी प्यासे को पानी पिलाया नहीं,

अब अमृत पिलाने से क्या फायदा।।

गंगा स्नान बहुत हो गया। अतः इस ऊहापोह से बाहर निकल कर परमात्मा की शरण में चलें और शुद्धता प्राप्ति हेतु प्रार्थना करें-

हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिए।

दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिए।।

हो उजाला सबके मन में ज्ञान के प्रकाश से।

और अंधेरा दूर सारा, हो अविद्या नाश से।।

सभी विद्याओं की सीखें, ज्ञान से भरपूर हों।

शुभकर्म में होवे तत्पर, दुष्ट गुण सब दूर हों।।

कीजिए हम सबका हृदय, शुद्ध अपने ज्ञान से।

मान भक्तों में बढ़ाओ, श्रद्धा-भक्ति दान से।।

सभा कार्यालय में एक दिवसीय शिक्षक अभिविन्यास कार्यक्रम का आयोजन

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.), गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर के कार्यालय में दिनांक 13 जुलाई 2019 को एक दिवसीय शिक्षक अभिविन्यास कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस अवसर पर कार्यक्रम में पहुंचने पर सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी को गुलदस्ता देकर स्वागत करते हुये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उप प्रधान श्री सरदारी लाल जी, श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट रजिस्ट्रार, सभा कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, सभा मंत्री श्री सुदेश कुमार जी। चित्र दो में ज्योति प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का शुभारम्भ करते हुये सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गुलशन शर्मा जी, श्री सरदारी लाल जी आर्य रत्न उप प्रधान, श्री राजू वैज्ञानिक जी वैदिक प्रवक्ता। नीचे चित्र में प्रिंसीपल विनोद कुमार जी दयानन्द माडल स्कूल, माडल टाउन जालन्धर को सम्मानित करते हुये सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी, सभा कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, सभा मंत्री श्री रणजीत आर्य जी, श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट रजिस्ट्रार, सभा उप प्रधान श्री सरदारी लाल जी, श्री विनोद भारद्वाज जी सभा मंत्री नवांशहर। जबकि चार में कार्यक्रम में उपस्थित अध्यापक गण एवं प्रबन्ध समिति के पदाधिकारी।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) की शिक्षा ईकाई आर्य विद्या परिषद पंजाब के द्वारा 13 जुलाई 2019 शनिवार को एक दिवसीय शिक्षक अभिविन्यास दिवस का आयोजन आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालय गुरूदत्त भवन किशनपुरा चौक जालन्धर में किया गया। इस कार्यक्रम में नवांशहर एवं जालन्धर की आर्य शिक्षण संस्थाओं के अध्यापकों एवं प्रबन्धकर्तृ समिति के सदस्यों ने भाग लिया। कार्यक्रम का शुभारम्भ गायत्री महामन्त्र एवं ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना के मन्त्रों द्वारा किया गया। सर्वप्रथम आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी, वरिष्ठ उपप्रधान श्री सरदारी लाल जी, कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी, प्रिंसिपल श्री विनोद शर्मा जी, आचार्य राजू जी वैज्ञानिक ने ज्योति प्रज्वलित करके कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। सभा के वरिष्ठ उपप्रधान श्री सरदारी लाल आर्य ने सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी, श्रीमती गुलशन शर्मा जी का पुष्पमाला पहनाकर एवं बुके देकर स्वागत किया। मंच का संचालन करते हुए सभा मन्त्री श्री विनोद भारद्वाज जी ने सभी गणमान्य अतिथियों का स्वागत सत्कार किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि उत्तम समाज के निर्माण के लिए शिक्षकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने पर्यावरण के प्रति सभी को जागरूक करते हुए कहा कि आज विश्व का सर्वाधिक चर्चित और चिन्तनीय विषय पर्यावरण है। वृक्षों के अन्धाधुन्ध कटान से पर्यावरण की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है। जल का दुरूपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। प्राकृतिक पदार्थों का दोहन मानव के द्वारा किया जा रहा है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए प्राकृतिक पदार्थों वृक्ष, जल, वायु आदि का संरक्षण करने के बजाय उसको नष्ट करने में लगा हुआ है। विकास के नाम पर प्रकृति का दोहन किया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप बाढ़, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोप देखने को मिल रहे है। अंधाधुध गाड़ियों, कारखानों से निकलने वाले धुएं से पर्यावरण दिन-प्रतिदिन प्रदूषित हो रहा है। इस समस्या के समाधान के लिए किसी के पास कोई उपाय नहीं है। आज हमें बच्चों को पर्यावरण के संरक्षण के लिए तैयार करना है। जल संकट की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसलिए हमें स्वयं भी जल को बचाना है और बच्चों को भी जल को बचाने के लिए प्रेरित करना है। उन्होंने सभी शिक्षकों को प्रेरणा देते हुए कहा कि सभी शिक्षक अच्छे समाज के निर्माण के लिए अपना योगदान दें व बच्चों के उज्वल भविष्य का निर्माण करें। इस अवसर पर दिल्ली से पधारे आचार्य राजू वैज्ञानिक जी ने भी शिक्षकों को सम्बोधित किया। उन्होंने शास्त्रों के अनुसार गुरू की महिमा बताते हुए कहा कि गुरू वह है जो शिष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाए। जिस प्रकार गुरू वशिष्ठ ने राम को मर्यादा पुरूषोत्तम बनाया, सान्दीपनी ऋषि ने श्रीकृष्ण को योगीराज बनाया, गुरू विरजानन्द ने महर्षि दयानन्द का निर्माण किया, उसी प्रकार एक अच्छा गुरू अच्छे शिष्य का निर्माण करते हुए उसे समाज के लिए उपयोगी बनाता है। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित शिक्षा पद्धति पर प्रकाश डालते हुए कहा कि महर्षि दयानन्द के मन्तव्यानुसार शिक्षा परिष्कार तथा संस्काराधान का प्रथम साधन है। इसी विचार से उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के दूसरे एवं तीसरे समुल्लास प्रमुखत: शिक्षा के सम्बन्ध में ही लिखे। इन दोनों समुल्लासों में शिक्षा के प्राथमिक व मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए बाल शिक्षा तथा अध्ययनाध्यापन विधि के अन्तर्गत शिक्षणालयों के लिए पाठ्यक्रम की भी समायोजना की है। शिक्षा मानव निर्माण की प्रमुख सोपान है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए दूसरे समुल्लास के आरम्भ में शतपथ का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए स्वामी जी लिखते हैं- मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरूषो वेद। अर्थात् प्रशस्त माता, प्रशस्त पिता, तथा प्रशस्त आचार्य वाला पुरूष ही ज्ञानवान होता है। सुयोग्य माता-पिता व आचार्य के संरक्षण में बालक मानवीय गुणों को धारण करके मानव संज्ञा को सार्थक करता है। वर्तमान समय में समाज में फैल रही बुराईयों को देखते हुए एक शिक्षक का दायित्व और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए सभी शिक्षकों से यही निवेदन है कि आज की युवा पीढ़ी को चरित्रवान, धार्मिक व गुणवान बनाएं। इस कार्यक्रम के मुख्य वक्ता दयानन्द माडल स्कूल जालन्धर के प्रिंसिपल श्री विनोद शर्मा जी ने शिक्षण की अनेक विधियों पर प्रकाश डालते हुए प्रोजेक्टर स्क्रीन के माध्यम से शिक्षकों को प्रेरित किया। स्कूल में अध्यापकों को विद्यार्थियों के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, किस प्रकार उसके अन्दर अच्छे गुणों का विकास करना चाहिए, किस प्रकार उसे जीवन में आगे बढने के लिए प्रेरित करना चाहिए? इन सभी विषयों पर उदाहरण देकर समझाया।

(शेष पृष्ठ 5 पर)

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**